

## श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 10: जड़ भरत और रूहण

18 September 2026

### 🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक राजा की पालकी ढोने के लिए विवश, मौन ऋषि जड़ भरत धीरे-धीरे और सावधानी से चलते हैं, किसी छोटे-से प्राणी को भी हानि पहुँचाने को अनिच्छुक — भार को अपनी देह पर उठाए, भीतर की अमर आत्मा में अविचल विश्राम करते हुए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

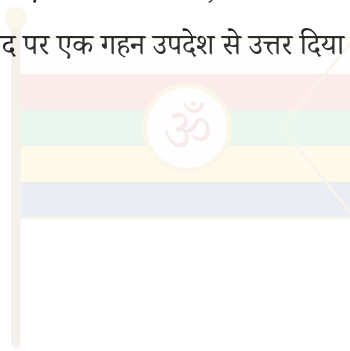
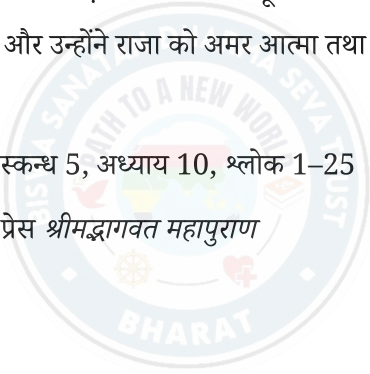
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, महान् ऋषि जड़ भरत के रूप में जन्मे, अपने ज्ञान को एक मूढ़ उन्मत्त के वेश में छिपाकर और संसार की अवमानना को पूर्ण शान्ति से सहते हुए। पंचम स्कन्ध का यह दसवाँ अध्याय हमें समस्त शास्त्र के सबसे देदीप्यमान संवादों में से एक देता है। राजा रूहण की पालकी ढोने

के लिए विवश किए गए, मौन ऋषि इतनी सावधानी से चलते हैं — किसी छोटे-से प्राणी पर भी पैर न रखने को अनिच्छुक — कि राजा उनका उपहास और उन्हें धमकाता है। और उत्तर में, उस धूल-भरे, तिरस्कृत बाह्य रूप के नीचे से, इतनी गहराई का उपदेश बहता है कि अभिमानी राजा अपने आसन से उतरकर उस ऋषि के चरणों में शीश झुका देता है।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 10 (दशम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: जड़ भरत और राजा रहूगण
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर, जड़ भरत राजा रहूगण से बोलते हैं
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: इक्षुमती नदी का तट और वह मार्ग जिस पर राजा रहूगण कपिल मुनि की ओर पालकी में यात्रा करते हैं
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार जड़ भरत को राजा रहूगण की पालकी ढोने के लिए विवश किया गया, उनकी धीमी और सावधान चाल के लिए उनका उपहास हुआ, और उन्होंने राजा को अमर आत्मा तथा नश्वर देह के भेद पर एक गहन उपदेश से उत्तर दिया — जिसने राजा को विनम्र पश्चात्ताप में ला दिया
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 10, श्लोक 1-25
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



## पिछले अध्याय से

नौवें अध्याय में, महान् भक्त भरत एक पावन ब्राह्मण कुल में जड़ भरत के रूप में पुनर्जन्म लेकर, समस्त उलझन से बचने के लिए जानबूझकर अपने ज्ञान को छिपाते रहे। उन्होंने उपहास और कठोर श्रम को अखण्ड समता से सहा, और जब डाकुओं ने उन्हें बलि के लिए पकड़ा, तब भगवान् की अपनी रक्षक शक्ति उन्हें बचाने उठ खड़ी हुई। यह अध्याय खुले मार्ग पर उनकी कथा को आगे बढ़ाता है, जहाँ उनकी छिपी महानता अन्ततः प्रकट होती है — श्रद्धा से नहीं, अपितु एक राजा की अधीरता से।

## सेवा में विवश किए गए

सिन्धु और सौवीर के प्रदेशों के राजा रहूगण कपिल मुनि से आध्यात्मिक उपदेश पाने के लिए पालकी में यात्रा कर रहे थे। इक्षुमती नदी के तट पर, उनके कहारों को भार बँटाने के लिए एक और पुरुष की आवश्यकता हुई, और — जैसा दैव ने रचा — वे जड़ भरत के पास आ पहुँचे। उन्हें युवा, हृष्ट-पुष्ट और बलवान् देखकर, और (जैसा उन्होंने सोचा) बैल के समान भार ढोने योग्य, उन्होंने उन्हें बलपूर्वक पकड़ लिया और बिना मज़दूरी के पालकी ढोने पर लगा दिया। और उस महान् आत्मा ने, जो ऐसे व्यवहार के योग्य न थे, मौन रहकर वह डंडा उठा लिया।

श्रीशुक उवाच

अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्गुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca atha sindhu-sauvīra-pate rahūgaṇasya vrajata ikṣumatyās taṭe tat-kula-patinā śibikā-vāha-puruṣānveṣaṇa-samaye daivenopasāditaḥ sa dvija-vara upalabdha eṣa pīvā yuvā samhananāṅgo go-kharavad dhuraṁ voḍhum alam iti pūrva-viṣṭi-grhītaiḥ saha grhītaḥ prasabham atad-arha uvāha śibikāṁ sa mahānubhāvaḥ*

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: जब सिन्धु-सौवीर के राजा रहूगण यात्रा कर रहे थे, और उनका कहार-प्रमुख इक्षुमती के तट पर एक और पालकी-वाहक खोज रहा था, तब दैव से उसे यह श्रेष्ठ ब्राह्मण मिल गया। उन्हें युवा, दृष्ट-पुष्ट और बैल या गधे के समान भार ढोने योग्य समझकर, उन्होंने उन्हें पहले से बेगार में पकड़े गए अन्य लोगों के साथ पकड़ लिया; और उस महान् आत्मा ने, यद्यपि वे इसके योग्य न थे, पालकी ढोई। (स्कन्ध 5, अध्याय 10, श्लोक 1)



इक्षुमती नदी के तट पर, राजा रहूगण के कहार दृष्ट-पुष्ट, मौन जड़ भरत को पकड़ लेते हैं और उन्हें, बिना मज़दूरी के, राजकीय पालकी ढोने पर लगा देते हैं (श्लोक 1)।

## एक सावधान चाल और एक राजा का क्रोध

किन्तु जड़ भरत अन्य कहारों के समान नहीं चल सकते थे। किसी जीव को हानि न पहुँचाने के प्रति सदा सचेत, वे तभी आगे पग रखते जब लगभग तीन फुट आगे की भूमि देख लेते, ताकि किसी छोटे-से प्राणी पर पैर न पड़े। उनकी सावधान, रुकती हुई चाल से पालकी की लय बिगड़ गई, और राजा रहूगण, हिचकोले खाते हुए, कहारों को ठीक से चलने के लिए पुकारे। दण्ड के भय से, उन्होंने बताया कि नया पुरुष उनके साथ क़दम नहीं मिला पाता।

यह सुनकर, राजा का क्षत्रिय स्वभाव भड़क उठा। अभिमान से आच्छादित होकर, उसने ऋषि पर तीखे व्यंग्य से चोट की — उन्हें थका, दुर्बल और वृद्ध कहकर उपहास करते हुए, जो अपना भाग ढोने में असमर्थ है। फिर भी जड़ भरत, जो आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त थे और एक क्षण के लिए भी देह को “मैं” या “मेरा” न मानते थे, पूर्णतया अविचल, पहले की भाँति ही पालकी ढोते रहे। जब पालकी पुनः हिली, तब राजा वास्तविक क्रोध में आ गया और धमकी दी कि वह उन्हें वैसे ही दण्ड देगा जैसे यमराज त्रुटि करने वालों को दण्ड देते हैं — ताकि, उसने कहा, वे होश में आ जाएँ।



किसी छोटे-से प्राणी को भी हानि पहुँचाने को अनिच्छुक, जड़ भरत प्रत्येक पग से पहले तीन फुट आगे का मार्ग देख लेते हैं, और उनकी सावधान चाल पालकी को हिला देती है, राजा के क्रोध को जगाते हुए (श्लोक 2-7)।

## मौन ऋषि बोलते हैं

तब उस पूज्य ब्राह्मण ने, समस्त प्राणियों के मित्र और आत्मा ने, मुस्कुराकर — अभिमान से पूर्णतया मुक्त — कहा। राजा ने जो कहा था, उन्होंने उत्तर दिया, वह पूर्णतया सत्य और कोई निन्दा नहीं। भार, उन्होंने कहा, उस देह पर टिका है जो उसे ढोती है, भीतर की आत्मा पर नहीं, जो कुछ नहीं ढोती; मार्ग और गन्तव्य चलती हुई देह के हैं, सर्वव्यापी आत्मा के नहीं। “मोटा” और “दुबला,” उन्होंने कहा, वे शब्द हैं जो केवल देह पर लागू होते हैं, कभी अमर आत्मा पर नहीं।

ब्राह्मण उवाच

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं

भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ।

गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा

पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥ ९ ॥

*brāhmaṇa uvāca tvayoditaṁ vyaktaṁ avipralabdhaṁ bhartuḥ sa me syād yadi vīra bhāraḥ  
gantur yadi syād adhigamyam adhvā pīveti rāśau na vidāṁ pravādaḥ*

अर्थ: ब्राह्मण ने कहा: जो तुमने कहा वह स्पष्ट सत्य और कोई निन्दा नहीं — यदि देह द्वारा ढोया जाने वाला भार सचमुच मेरा होता, हे राजन्, अथवा यदि गन्तव्य और मार्ग, जो चलती देह के हैं, मुझसे सम्बन्ध रखते; किन्तु “मोटा” वह शब्द है जो विवेकी लोग देह पर लगाते हैं, कभी आत्मा पर नहीं। (स्कन्ध 5, अध्याय 10, श्लोक 9)

फिर उन्होंने गिनाया कि देह के साथ तादात्म्य बाँधने वाले प्राणी में शरीर की दशाओं से लेकर मन की दुर्बलताओं तक जितने भी विकार उठते हैं, वे सब — उन्होंने कहा — केवल उसी तादात्म्य में उठते हैं, और शुद्ध आत्मा को कभी स्पर्श नहीं करते।

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च

क्षुत्तृड् भयं कलिरिच्छा जरा च ।

निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो

देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥ १० ॥

*sthaulyam kārśyam vyādhaya ādhayaś ca kṣut tṛḍ bhayaṁ kalir icchā jarā ca nidrā ratir manyur ahaṁ madaḥ śuco dehena jātasya hi me na santi*

अर्थ: मोटापन और दुबलापन, शारीरिक रोग और मानसिक चिन्ताएँ, भूख और प्यास, भय और कलह, इच्छा और वृद्धावस्था, निद्रा और आसक्ति, क्रोध, अहंकारजन्य मद और शोक — ये सब उसी के हैं जो देह से तादात्म्य के साथ जन्मा है, और मुझ शुद्ध आत्मा में नहीं पाए जाते। (स्कन्ध 5, अध्याय 10, श्लोक 10)

राजा के इस पूर्व-आरोप का भी उत्तर देते हुए कि वे “जीवित रहते हुए मृत” प्रतीत होते हैं, उन्होंने कहा कि जो कुछ भी पदार्थ से जन्मा है उसका अपना आरम्भ और अपना अन्त होता है, अतः यह बात प्रत्येक देहधारी पर समान रूप से लागू होती है और उनके लिए कोई विशेष निन्दा नहीं (श्लोक 11)। स्वामी और सेवक का सम्बन्ध, उन्होंने आगे कहा, केवल वहीं दृढ़ रहता है जहाँ वह स्थिर और अपरिवर्तनीय हो; किन्तु भाग्य पलटते हैं, और आज का राजा कल का सेवक हो सकता है। मात्र व्यवहार के अतिरिक्त, शासक और शासित में वास्तविक भेद कहाँ है? और, उन्होंने कोमलता से पूछा, राजा को उसे सुधारने से सचमुच क्या मिलेगा जो अपनी ही आत्मा में स्थित होकर एक उन्मत्त के समान व्यवहार करता है — क्योंकि ऐसे को उपदेश देना पिसे हुए को पीसने के समान व्यर्थ होगा।

उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां

गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ।

अर्थ: कियान् भवता शिक्षितेन

स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥ १३ ॥

*unmatta-matta-jaḍavat sva-saṁsthām gatasya me vīra cikitsitena arthaḥ kiyān bhavatā śikṣitena stabdha-pramattasya ca piṣṭapeṣaḥ*

अर्थ: हे राजन्, मुझे सुधारने से तुम्हें क्या लाभ — मुझे जो, अपनी ही आत्मा में स्थित होकर, एक उन्मत्त, मत्त या मूढ़ के समान व्यवहार करता है? ऐसे को शिक्षा देने का प्रयास, चाहे वह सचमुच मूढ़ हो या केवल दिखता हो, पिसे हुए को पीसने के समान निष्फल होगा। (स्कन्ध 5, अध्याय 10, श्लोक 13)



अपने धूल-भरे, तिरस्कृत बाह्य रूप के नीचे से, जड़ भरत राजा को अमर आत्मा पर एक शान्त उपदेश से उत्तर देते हैं, जो देह के भारों से अछूती है (श्लोक 9-13)।

## राजा झुक जाता है

ये थोड़े-से सीधे शब्द कहकर, वह शान्त ऋषि पुनः पालकी उठा लिए, अपने शेष कर्म को केवल भोगकर क्षीण करने में सन्तुष्ट। किन्तु राजा ने कुछ ऐसा सुन लिया था जिसने उसके अपने हृदय की गाँठ को बीँध दिया। उसकी सच्ची श्रद्धा ने उसे सत्य की खोज के योग्य बना दिया था, और अब वह शीघ्रता से अपनी पालकी से उतरकर भूमि पर साष्टांग गिर पड़ा, अपने शीश से ऋषि के चरणों का स्पर्श करते हुए, उसका राजकीय अभिमान पूर्णतया विलीन।

आप कौन हैं, उसने विस्मय से पूछा — क्या कोई अवधूत, वेश बदलकर विचरते हुए? उसने स्वीकार किया कि वह देवताओं के किसी अस्त्र से नहीं डरता — न इन्द्र के वज्र से, न शिव के त्रिशूल से, न यम के दण्ड से — किन्तु वह, सबसे बढ़कर, किसी पावन आत्मा के प्रति अनादर के पाप से भयभीत है। फिर, यह अनुभव करते हुए कि यह छिपा हुआ ऋषि स्वयं कपिल मुनि का साक्षात् प्रतिनिधि हो सकता है, उसे ज्ञान देने आया हुआ, उसने प्रार्थना की कि वे उस पर कृपादृष्टि करें, ताकि वह अपने अभिमान में किए गए अपराध से शुद्ध हो सके, और इस संसार में एक आत्मा के लिए सच्ची शरण को प्रकट करें।



ऋषि के शब्दों से हृदय तक बिंधकर, राजा रूहगण अपनी पालकी से उतरकर जड़ भरत के चरणों में शीश झुका देते हैं, उनका राजकीय अभिमान पूर्णतया विलीन (श्लोक 15-25)।

झुकते हुए भी, राजा रूहगण एक सच्चे जिज्ञासु की भाँति उपदेश को परखे बिना न रह सका। उसने पूछा — यदि देह की थकान वास्तव में आत्मा को कभी नहीं छूती, तो इसी परिश्रम की थकान आपको भी क्यों प्रतीत होती है? और यद्यपि आप कहते हैं कि मार्ग, गन्तव्य और कर्तव्य का यह संसार परम सत्य नहीं है, फिर भी इसके प्रभाव स्पष्ट अनुभव होते हैं — जैसे एक ही अग्नि पर रखा दूध और चावल का पात्र क्रमशः पक जाता है, वैसे ही सुख-दुःख देह से मन में और, ऐसा प्रतीत होता है, आत्मा तक भी पहुँचते हैं। उसने आगे कहा कि उसका कठोर व्यवहार भी निरर्थक नहीं था: राजा का कर्तव्य भटके हुए को सुधारना है, और जो अपने उचित कार्य में विवश किया जाता है, चाहे अनिच्छा से ही सही, वह उसी परिश्रम में अपने पूर्व-कर्मों का फल भस्म कर देता है। (श्लोक 21-23)

किन्तु इस प्रकार तर्क करते हुए भी, राजा का अपना हृदय उसके तर्क से आगे निकल गया। उसने स्वीकार किया कि उसने जो कुछ भी कहा था, वह उसे और उलझा ही रहा था, क्योंकि इस वाद-विवाद के नीचे एक अधिक गम्भीर सत्य छिपा था: उसने एक महान् आत्मा का अनादर किया था, राजा कहलाने वाली देह के मिथ्या अभिमान से फूला हुआ। उसने ऋषि से उनकी हेतु-रहित कृपादृष्टि की एक झलक के लिए प्रार्थना की, ताकि वह इस पाप से पार हो सके। यहाँ अध्याय अपनी सबसे गहरी बात पर पहुँचता है, क्योंकि राजा ने उस एक भय का नाम लिया जो उन सब भयों से भी बढ़कर था जिन्हें वह पहले ही अस्वीकार कर चुका था:

तन्मे भवान्नरदेवाभिमान-  
मदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य ।  
कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो  
यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥ २४ ॥

*tan me bhavān nara-devābhimāna- madena tucchīkṛta-sattamasya kṛṣīṣṭa maitrī-dṛśam ārta-bandho yathā tare sad-avadhyānam aṁhaḥ*

अर्थ: हे व्यथितों के मित्र, उसने कहा, मैंने राजा होने के मिथ्या अभिमान से उन्मत्त होकर श्रेष्ठतम महात्मा का अनादर किया है; अतः कृपया मुझ पर वही मैत्री-दृष्टि डालिए, जिससे मैं इस महात्मा-अवमानना के पाप से पार हो सकूँ। (पंचम स्कन्ध, दशम अध्याय, श्लोक 24)

न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य

साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ।

महद्विमानात् स्वकृताद्धि मादृङ्

नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥ २५ ॥

*na vikriyā viśva-suhṛt-sakhasya sām्येन vītābhimates tavāpi mahad-vimānāt sva-kṛtād dhi māḍṛṇ naṅkṣyaty adūrād api śūlapāṇiḥ*

अर्थ: आप स्वयं इससे अविचलित रहते हैं, उसने कहा, क्योंकि आप भगवान् के मित्र हैं, जो स्वयं समस्त प्राणियों के हितैषी हैं, और उसी समदृष्टि के कारण आपने सबके प्रति अपने भाव का सम्पूर्ण त्याग कर दिया है; किन्तु जो कोई किसी महात्मा के विरुद्ध अपराध करता है, चाहे वह कितना भी बलशाली क्यों न हो — शिव का त्रिशूल धारण करने वाला भी — वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। (पंचम स्कन्ध, दशम अध्याय, श्लोक 25)

यही राजा की इस स्वीकारोक्ति में छिपी सबसे गहरी शिक्षा है। किसी वज्र, त्रिशूल या यम के दण्ड से भी बढ़कर — जिनसे उसने भय न होने की बात कही थी — वह अपराध है जो भगवान् की शरण ग्रहण करने वाली किसी आत्मा के चरणों में किया जाए। जड़ भरत को राजा के पूर्व अनादर से कुछ भी हानि नहीं हो सकती थी, क्योंकि वे ऐसे समस्त परिवर्तनों से परे प्रतिष्ठित थे; सम्पूर्ण संकट केवल उसी का था जिसने अनादर किया। यही वह भय है जिसे प्रत्येक सच्चे जिज्ञासु को धारण करना चाहिए: भगवान् के भक्त के प्रति किया गया एक ही अनादर वर्षों की आध्यात्मिक साधना को नष्ट कर सकता है, जबकि उसके समक्ष की गई एक ही विनम्रता, जैसा राजा रहूगण ने अभी दिखाया, कृपा का द्वार खोल देती है।

## इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

आत्मा देह नहीं है। जड़ भरत के उपदेश का हृदय यह है कि समस्त भार, समस्त पीड़ाएँ, मोटेपन और दुबलेपन, भूख और वृद्धावस्था के समस्त परिवर्तन केवल देह के हैं। भीतर की सच्ची आत्मा अछूती, अमर, सदा मुक्त है। इसे थोड़ा भी जान लेना प्रत्येक भय की पकड़ को ढीला करना है।

समस्त जीवन के प्रति श्रद्धा सन्त का चिह्न है। सच्ची पवित्रता स्वयं को इस अटूट सावधानी में प्रकट करती है कि किसी छोटे-से प्राणी को भी हानि न पहुँचे — यह कोमलता उसी दृष्टि से जन्मती है जो प्रत्येक प्राणी में, चाहे वह कितना ही तुच्छ क्यों न हो, भगवान् को देखती है।

पद और स्थिति व्यवहार हैं, वास्तविकता नहीं। स्वामी और सेवक, राजा और कहार — ये सम्बन्ध भाग्य के पलटने के साथ बदलते हैं। जो आत्मा इसे देखती है वह ऊँचे के अभिमान और नीचे के भय दोनों से मुक्त हो जाती है।

सच्ची महानता अपमान का उत्तर शान्ति से देती है। आत्मा में प्रतिष्ठित व्यक्ति धमकी और उपहास का सामना बिना क्रोध और बिना किसी बचाव के करता है; ऐसी शान्त दृढ़ता किसी भी प्रत्युत्तर से अधिक शक्ति रखती है और अभिमानी को भी विनम्र कर सकती है।

निष्ठा ज्ञान का द्वार खोलती है। राजा रहूगण की रक्षक कृपा उसकी सच्ची श्रद्धा थी, जिसने उसे सत्य सुनने पर पहचानने और उसके समक्ष झुकने योग्य बनाया। हमारा दोष कितना भी बड़ा हो, एक ईमानदार, विनम्र हृदय सदा मुड़ सकता है और उस उपदेश को ग्रहण कर सकता है जो उसे मुक्त करता है।

किसी भक्त के अनादर के भय से बढ़कर कोई भय नहीं है। राजा रहूगण ने वज्र, त्रिशूल और यम के दण्ड का नाम लिया, और घोषित किया कि इनमें से कोई भी भगवान् के प्रति समर्पित आत्मा के अनादर के संकट के समान नहीं है। ऐसे अनादर से भक्त को कुछ भी हानि नहीं होती; जो अनादर करता है, वही सब कुछ खो देता है।

## एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में हमें सबसे अधिक जो द्रवित करता है, वह दो ऐसे पुरुषों का मिलन है जो इससे अधिक असमान नहीं दिख सकते थे — एक शक्तिशाली राजा पालकी पर आसीन, और एक धूल-भरा, मौन श्रमिक उसे अपने कन्धे पर ढोता हुआ — और उसके बाद आने वाला वह शान्त पलटाव, जिसमें सच्चा राजा वही निकलता है जो भार ढो रहा है। जड़ भरत हमें सिखाते हैं कि हमारा मूल्य इससे कुछ नहीं कि दूसरे हमें क्या ढुलाते हैं, या किन नामों से पुकारते हैं, या संसार के क्रम में हमें कहाँ बिठाते हैं। वह सब केवल देह को छूता है। भीतर की आत्मा वही रहती है जो वह सदा से रही है: मुक्त, अछूती, शान्त। और फिर भी यह अध्याय एक ठण्डे वैराग्य में समाप्त नहीं होता; यह कोमलता में समाप्त होता है — एक अभिमानी राजा एक श्रमिक के चरणों में साष्टांग पड़ा हुआ, और एक ऋषि जो उसके प्रति तनिक भी द्वेष नहीं रखते। यही सच्चे ज्ञान की सुन्दरता है: वह हमें कठोर नहीं, कोमल बनाता है; दूर नहीं, अपितु प्रत्येक प्राणी का मित्र। जब हम, थोड़ा भी, उस अमर आत्मा में विश्राम करने लगते हैं, तब हम भी अपने भारों को कटुता बिना ढो सकते हैं और अपमान तथा मान दोनों से उसी अखण्ड शान्ति से मिल सकते हैं।

## एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, जब कोई कार्य भारी लगे या कोई कर्तव्य आप पर अनुचित रूप से थोपा जाए, तो रुककर स्वयं को शान्ति से स्मरण कराइए, जैसा जड़ भरत ने सिखाया: *भार देह पर टिका है, भीतर की आत्मा पर नहीं।* फिर भी वह कार्य उठा लीजिए, उसे भगवान् को एक अर्पण के रूप में करते हुए, और मन ही मन कहिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” और दिन भर, ऋषि के कोमल उदाहरण का एक छोटे-से रूप में अनुसरण कीजिए — संसार में इस सचेतता से चलिए कि किसी छोटे-से प्राणी को भी हानि न पहुँचे, सबमें भगवान् की उपस्थिति देखते हुए। इसमें, आप उस ज्ञान का भी अभ्यास करते हैं जो हृदय को मुक्त करता है और उस करुणा का भी जो उसका स्वाभाविक फल है।

## उपसंहार

पंचम स्कन्ध का दसवाँ अध्याय हमें एक ही देदीप्यमान सत्य के साथ छोड़ता है: सच्ची गरिमा न पद में है, न बल में, न देह के भाग्य में, अपितु उस आत्मा की शान्ति में है जो स्वयं को जानती है और भगवान् की शरण में विश्राम करती है। जड़ भरत का मौन बल और राजा रहूगण का विनम्र समर्पण — दोनों ही हमारे हृदयों में स्थान पाएँ: वह साहस जो जीवन हमारे कन्धों पर जो कुछ भी रखे उसे बिना शिकायत सहे, और वह तत्परता जो सत्य के कहे जाते ही झुक जाए, चाहे वह जहाँ से भी, जिसके भी द्वारा हम तक आए।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

## संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, दशम अध्याय, “The meeting of Jadabharata with king Rahugana।”
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-10-jada-bharata-and-king-rahugana-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-10-jada-bharata-and-king-rahugana-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट